श्रीः

रामकृष्ण [illegible] माला



अर्थात्

बंगालके [illegible] परमहंस रामकृष्ण[illegible]के

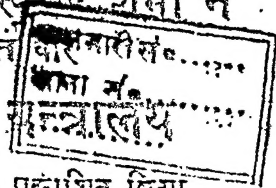
[illegible]का संग्रह

जिसको—

सनातनधर्मपताका सम्पादक

(मु० कु०) रामस्वरूप शर्मा ने

सम्पादित [illegible]

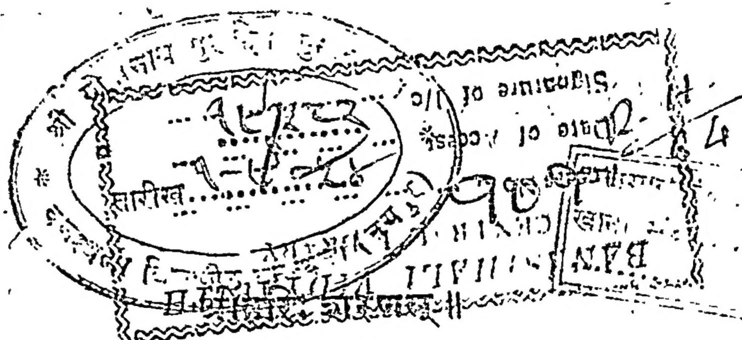


सनातनधर्म [illegible]लय

[illegible]रादाबाद में छापकर प्रकाशित किया.

१९११

Printed & Publishee by Ramswaruq Sharma
at the Sanatandharm press Moradabad.



रामकृष्णोपदेशमाला

अर्थात्

परमहंस स्वामी रामकृष्णजीके उपदेश



(१) तुम रातके समय आकाश में तारागणोंको देखते हो, परन्तु सूर्योदय होजाने पर तुम उनको नहीं देखपाते, तो क्या यह कहसकते हो, कि-दिनके समय आकाश में तारे नहीं हैं ? तैसे ही हे मनुष्यों ! तुम अपनी अज्ञानरूपा रात्रिके समय सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नहीं देखपाते हो तो क्या 'ईश्वर नहीं है' ऐसा कहसकोगे ? ।

(२) दो पुरुष एक गिरगटके रंगके विषयमें बड़ा विवाद कररहे थे, एकने कहा-उस ताड़के वृक्षपर का गिरगट सुंदर लाल रंगका है, दूसरेने

इस बातको न मानकर कहा, कि–तुम भूलते हो यह लाल नहीं है, भूरा है । आपसकी तर्कोंसे इसका निश्चय न होसकने पर वह दोनों पुरुष उस वृक्षके नीचे रहनेवाले और उस गिरघटको सब स्वरूपोंमें देखनेवाले मनुष्यके पास गये और उस मनुष्यसे, इन दोनोंमेंसे एकने कहा, कि–भाई! इस वृक्षके ऊपर रहनेवाला गिरघट लाल रंगका है या नहीं ? उसने उत्तर दिया, कि–हां भाई लाल रंगका है, तब दूसरे ने कहा, कि–तुम यह क्या कहते हो, यह तो भूरे रंगका है, उस मनुष्यने इससे भी नम्रताके साथ कहा कि–हांजी भूरा है, क्योंकि–यह मनुष्य जानता था, कि–गिरघट ऐसा प्राणी है, कि–जो सदा अपने रंग को बदला करता है, इसीसे उसने विवाद करनेवाले दोनों मनुष्योंकी बातके लिये हां कही । इसी प्रकार सच्चिदानन्द परमात्माके अनेकों स्वरूप हैं, जिस भक्तने ईश्वरको एक ही स्वरूपमें देखा है, वह ईश्वर के उस ही स्वरूपको जानता है परन्तु जिसने ईश्वर को उसके अनेकों स्वरूपोंमें देखा है, वह ही यह

कह सकता है, कि-यह सब स्वरूप एक ही ईश्वरके हैं, क्योंकि--ईश्वर अनेकरूप है। उसका रूप है और रूप नहीं है तथा उसके अनेकों रूप हैं, कि-जिनको कोई नहीं जानता।

(३) चार अंधे एक हाथीको देखने गए, उनमेंसे एकने हाथीके पैरको पकड़लिया और कहने लगा, कि-हाथी थंभकी समान है। दूसरेके हाथमें सूँड आई, तो वह कहने लगा, कि-हाथी मोटे मूसलकी समान है। तीसरा पेटसे जाकर चिपटगया और कहनेलगा, कि-हाथी पानीकी कोठीसा है और चौथे अंधेके हाथमें कान आये सो वह कहनेलगा, कि-हाथी सूपसा (छाजकी समान) है, इस प्रकार वह हाथीके आकारके विषयमें विवाद करने लगे, उस समय एक रास्तेगीरने इनको इस प्रकार लड़ते हुए देखकर कहा, कि-भाई ! तुम क्यों झगड़ा कर-रहे हो ? तब उन्होंने इस पथिकको सब बात बताई और इसकोही पंच बनाकर फैसला करनेके लिये कहा, तब पथिकने कहा, कि-तुममें से किसीने भी

हाथीको नहीं देखा है, हाथी थंभसा नहीं है किंतु उसके पैर थंभसे हैं। हाथी पानीकी कोठीसा नहीं है किन्तु उसका पेट पानीकी कोठीसा है, वह सूपसा नहीं है परन्तु उसके कान सूपसे हैं तथा वह मोटा मूसलसा नहीं है, किंतु उसकी सूंड मूसलसी है, हाथी तो यह सब मिलकर है, इस प्रकार ही जो ईश्वरके एक ही स्वरूपको एक ही ओरसे देखते हैं वह ही उसके रूपके विषयमें परस्पर विवाद करते हैं।

(४) जैसे एकही सोनेके खँडुए कुंडल आदि अनेकों आकार बनजाते हैं उनके नाम-रूपमें ही भेद होता है, तैसे एक ही परमात्मा भिन्न २ देशों में और भिन्न २ समयोंमें जुदे २ नाम-रूपोंसे भजा जाता है, किसीको इसे पिता कहना रुचता है, कोई माता कहने में प्रसन्न होता है, परन्तु सब एकको ही जुदे २ प्रकार और जुदे २ संबंधसे भजते हैं।

(५) मनुष्य उपधान (तकिये) की समान है किसी के गलेफका रंग लाल होताहै, दूसरेका पीला होताहै, तीसरे का हरा होताहै, परन्तु सबमें एक

ही पदार्थ रुई होतीहै इसप्रकार ही मनुष्यों में भी कोई गोरा, कोई काला, कोई साधु और कोई दुष्ट होताहै, परन्तु सबमें एक ही परमात्मा बसता है।

(६) गुरुने कहा 'भूतमात्र परमात्मा है' शिष्यने इस बातका तात्पर्य न समझकर मोटा अर्थ ग्रहण करलिया एक दिन मार्गमें जातेहुए इसको हाथी मिला, महावत (हाथीवान्) ने पुकारकर कहा कि एक तरफ को होजाओ, बचजाओ, उस समय शिष्यने मनमें विचार किया, कि--मैं क्यों हटूँ मैं परमात्मा हूं और हाथी भी परमात्मा है, परमात्मा को परमात्मासे क्या भय ? ऐसा विचारकर वह बीच में ही खडारहा, हाथी ने इसको सूँडसे उठाकर एक ओर को फेंकदिया, जिससे इसके बडी चोट लगी, तब तो इसने गुरुजीके पास जाकर सब बात कही उसको सुनकर गुरुने कहा, कि--यह बात ठीक है, कि-तू परमात्मा है और हाथी भी परमात्मा है तथा (भूतमात्र परमात्मा है, इसकारण) हाथीवान् भी परमात्मा है, उस हाथीवान् रूप परमात्माने तुझसे

हटजानेको कहा तो तू हटा क्यों नहीं सार यह है, कि-सर्वत्र परमात्मदृष्टि रखकर भी सांसारिक सकल कार्योंको संसारके नियमोंके अनुसार ही करना चाहिये ।

(७) मनुष्यशरीर पानी औटानेके पात्रकी समान है और मन तथा इंद्रियें उसमें जल तथा अन्य पकने वाले पदार्थोंकी समान हैं, पात्रको उसके पदार्थों सहित अग्नि पर चढ़ाओ तो वह इतना गरम हो जायगा, कि—तुम्हारी उँगली उससे छूते ही जल-जायगी, परन्तु वह गरमी पात्रकी या पात्रमेंके पदार्थों की नहींहै, किंतु अग्निकी है, तैसे ही मनुष्योंमें ब्रह्म-रूप अग्नि है, वह ही मन और इन्द्रियों से उनके काम करवाता है जब इस अग्निका काम करना बन्द होजाता है तब इन्द्रियें (ज्ञानेंद्रियें और कर्मेन्द्रियें) भी बंद होजाती हैं ।

(८) एक मनुष्यने कल्पवृक्षके नीचे बैठकर राजा होनेकी इच्छा की, और क्षणभरमें राजा होगया, दूसरे क्षणमें मनोहारिणी सुंदरीकी इच्छा की और

तत्काल सुंदरी आकर उसके पास खड़ी होगई तद्-नन्तर इस मनुष्यने अपने मनमें विचार किया, कि-यदि बाघ आवे और खाजाय तो? शोक कि-उसी क्षणमें बाघने आकर पंजा जमादिया। ईश्वर भी कल्पवृक्षकी समान ही है, जो ईश्वरके सन्मुख रह कर ऐसा विचारते हैं, कि-हम गरीब अकिञ्चन हैं तो वह ऐसे ही रहते हैं परन्तु जो ऐसा विचार ते हैं और श्रद्धापूर्वक मानते हैं, कि-प्रभु सबके योगक्षेमकर्त्ता हैं अर्थात् प्राणीकी सब आवश्यकताओंको पूरी करते हैं उस पुरुषको ईश्वरके पाससे सब कुछ मिलता है।

(१०) घंटा बजता हो उस समय वार २ होनेवाली टंकार एक दूसरी टंकारसे जुदी मानीजाती है, परन्तु जब बजाना बंद करदिया जाता है तब केवल अस्पष्ट शब्द ही सुनाई देता है, हम एक स्वरको दूसरे स्वर से, हर एकका अमुक स्वरूप है, इस प्रकार जुदा कर-सकते हैं, परन्तु टंकार बंद होनेपर अखंडध्वनिमें हम आकारकी कल्पना नहीं करसकते, इस घंटेकी

आवाज की समान ही ईश्वर साकार और निरा-
कार दोनों है।

(११) जैसे बालक छोटे २ अक्षर ठीक लिख-
सके उससे पहिले लिखना सीखनेका आरंभ करता
हुआ बड़ी२ चलने के सी लकीरें खेचता है, ऐसेही
हमैं अपने मनको पहिले साकार (वस्तुओं) के ऊपर
स्थिर करके उसको एकाग्र करना सीखना चाहिये,
ऐसा करने पर चित्त जमा, कि-उसको सहजमें ही
निराकारके ऊपर चढ़ाया जासकता है।

(१२) जैसे निशाना लगानेवाला पहिले बड़े
और भारी पदार्थको निशाना ताककर गोली मारना
सीखता है और पीछेसे ज्यों २ अभ्यास होताजाता
है त्यों २ बड़े निशानेकी अपेक्षा बहुत छोटे निशाने
पर बहुतही सहजमें गोली मारसकता है, तैसे ही
जब साकार मूर्तियोंकेऊपर ठहरनेका मनको अभ्यास
होजाता है तब उसको निराकार भावके ऊपर ठह-
राना सहज होजाता है।

(१३) ईश्वर केवल और नित्य ब्रह्म है तथा

पिताका पिता भी है, अभिव्यक्त ब्रह्म निःसीम समुद्रकी समान है और अन्तसे रहित है उसमें जब मैं गोता लगाताहूं तब डूबनेलगता हूँ, परंतु जब मैं नित्य लीला (प्रवृत्ति) युक्त सगुण ईश्वर (श्रीहरि) के पास जाताहूँ तब जैसे डूबता हुआ मनुष्य किनारेके पास आजाता तैसे ही मुझे शान्ति प्राप्त होती है।

(१४) ईश्वर निराकार भी है और साकार भी है तथा साकारत्व और निराकारत्व दोनोंसे पर भी है और क्या है सो वह स्वयं ही बतासकता है।

(१५) साकार ब्रह्म दृष्टिसे देखाजासकता है, इतना ही नहीं किंतु प्यारेसे प्यारे मित्रकी समान सन्मुख होकर स्पर्श किया जासकता है।

(१६) जैसे पानी जमता है तब बरफ होता है, तैसे ही ईश्वरका दृश्य स्वरूप (साकाररूप), सर्वव्यापक निराकार ब्रह्मका ही जड (स्थूल) रूप है, ठीक २ देखाजाय तो इसको स्थूल सचिदा-नंद कहना चाहिये, जैसे बरफ पानीका ही

भाग होताहै, थोड़ीदेर पानीमें रहताहै और पीछे गलकर उस पानीमें ही मिलजाता है, तैसे ही सगुण ब्रह्म निर्गुण ब्रह्मका ही अङ्ग है, निर्गुणमें से यह उत्पन्न होताहै, उसमें स्थित रहताहै और अन्तमें उसमें ही लीन होकर अदृश्य होजाताहै।

(१७) परमेश्वर दो समय हँसताहै, एक तो जब 'यह मेरा है और यह तेरा है' इसप्रकार कह-कर भाई भाई कुटुंबकी मिलकियतको बांटतेहैं और दूसरे जब रोगी मृत्युकालके समीप होताहै और वैद्य कहता है कि-मैं इसको अच्छा करदूंगा।

(१८) सूर्य पृथिवीसे बहुत बड़ा है, परंतु बहुत दूर होने के कारण छोटा पहियासा दीखताहै, तैसे ही ईश्वर अनन्तगुणा-महान् है, परंतु हम उससे बहुत दूर रहनेके कारण (स्मरणादि न करनेके का-रण) उसके सच्चे महत्त्वको समझने से सर्वथा शून्य रहते हैं।

(१९) एक राजा ब्राह्मणहत्याका महाघोर अप-राध करके शुद्ध होनेके निमित्त, क्या प्रायश्चित्त क-

रना चाहिये, यह जाननेको एक साधुके आश्रममें गया, परंतु तहां साधुका पुत्र मिला, साधु कहीं बाहर गया था, साधुके पुत्रने राजाका वृत्तान्त सुनकर कहा, कि-तीन बार रामका नाम लेना बस तुम्हारा पाप दूर होजायगा, इस के अनन्तर जब साधु आया और पुत्रका बतायाहुआ प्रायश्चित्त सुना तो बड़े क्रोधमें होकर उसने पुत्रसे कहा, कि-अनेको जन्मोंमें कियेहुए पाप सर्वशक्तिमान् ईश्वरका नाम केवल एकबार ही लेनेसे दूर होजाते हैं, इसलिये हे पुत्र! तेरी श्रद्धा बड़ी ही निर्बल है, जो तूने तीनबार नाम लेनेकी आज्ञा दी, जा इस अपराधके कारण तू चाण्डाल होजा, यह ही रामायणमें कहाहुआ गुहनामा निषाद हुआ।

(२०) जब लकड़ीका तखता नौकारूपमें तैरता हुआ जाताहै तब सैकड़ों मनुष्योंको पार करदेता है और डूबता नहीं और अकेला बहताजाता हो तो काकके बोझ से भी जलमें गोता खाजाता है; ऐसे ही जब तारनेवाला ईश्वर अवतार लेताहै

तब असंख्यों मनुष्य उसके आश्रय से भवसागर के पार होजाते हैं, सिद्ध पुरुष बहुत कष्ट और परिश्रम से अपना ही उद्धार करसकता है।

(२१) कितनी ही ऋतुओंमें बहुत गहरे कुओं में से ही और बड़ी कठिनतासे जल मिलसकता है, परंतु वर्षा ऋतुमें जब देशमें चारों ओर जल ही जल होजाता है हरएक स्थलमें बहुत सरलतासे जल मिलसकता है तैसे ही साधारण रीतिसे प्रार्थनाए और तपश्चर्या करने से बडे कष्टसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है परंतु जब अवताररूपी रेल आतीहै तब ईश्वर हरएक स्थानपर मिलता है।

(२२) यह न विचारना, कि—राम, सीता, श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे, केवल आलङ्कारिक वाणी के नाममात्र हैं, या शास्त्रोंमें केवल आन्तर और गूढ़ अर्थही है, अरे ! वह तुम्हारेसे ही देहको धारण कियेहुए थे, परंतु वह देवता थे, इसकारण उनके जीवनके ऐतिहासिक और आध्यात्मिक दोनो अर्थ हो सकते हैं।

(२३) जैसे समुद्रकी तरंगेहैं तैसेही ब्रह्मके अवतारहैं।

(२४) इस जगत्में सिद्ध पांच प्रकार के हैं (१) स्वप्नसिद्ध–जो स्वप्नमें हुई प्रेरणासे सिद्धिको प्राप्त होताहै (२) मन्त्रसिद्ध जो पवित्र मन्त्रके अनुष्ठान से सिद्धिको पाता है। (३) हठात्सिद्ध–जो एकाएकी सिद्धि प्राप्त करलेता है, जैसे गरीब मनुष्य गुप्तरूप में धनभण्डार इकट्ठा करनेसे वा धनी कुटुम्बमें विवाह संबंध करने से एकसाथ धनवान् होजाताहै, तैसे ही बहुत से दुःखी पापी एकदम पवित्र होजातेहैं और परमात्माके दरबारमें पहुँचजाते हैं (४) कृपासिद्ध जैसे गरीब आदमी राजाकी कृपासे धनवान् हो-जाताहै तैसे ही जो ईश्वरकी कृपासे सिद्धि प्राप्त करताहै वह कृपासिद्ध है (५) पांचवां नित्यसिद्ध है, जो सदा सिद्ध रहताहै, जैसे कितनी ही बेलोंमें से पहिले फल और पीछे फूल निकलताहै तैसे ही नित्यसिद्ध पुरुष सिद्ध हुआ ही उत्पन्न होताहै और उसको मुक्तिके लिये श्रम करते जो देखाजाताहै वह केवल मनुष्यों के लिये दृष्टान्तमात्र है।

(२५) हंस पानीमें से दूधको अलग करसकता

जाताहै और वह ब्रह्मरूप अनंतसागरमें डूबजाताहै

(३०) दूध और पानीको जब इकट्ठा करते हैं तब वह अवश्य ही मिलजाता है, इसकारण फिर उस मेंसे दूध अलग नहीं होसकता, इसीप्रकार अपने उत्कर्षका अभिलाषी मुमुक्षु यदि अविवेकसे सब-प्रकारके सांसारिक मनुष्योंसे मिले तो वह अपनी ऊँची भावनाओंको खोबैठताहै, इतना ही नहीं, किंतु इसके पहिलेके श्रद्धा, प्रेम (भक्ति) और उत्साह (वेग) मालूम भी न हों इसप्रकार नष्ट होजातेहैं, परन्तु जब तुम दूधका माखन बना लेते हो उस समय वह पानीके साथ नहीं मिलता किंतु पानीके ऊपर तैरनेलगता है, इसीप्रकार जब आत्मा एकसमय ब्रह्मभावको प्राप्त होजाताहै तब वह चाहे जैसे संगमें रहै परन्तु उसके ऊपर खोटका असर कभी नहीं होगा।

(३१) जबतक कोई बालक उत्पन्न नहीं होता तबतक नवोढा स्त्री अपने घरके काममें व्यस्त

रहती है, परन्तु सन्तान उत्पन्न होते ही घर के तमाम कामकाज को छोडदेती है तथा फिर उसको उसमें आनन्द नहीं आता किन्तु वह तमाम दिन नए जन्मे बालकको ही लाड लडाती और बड़े आनन्दसे उसके चोचले करती है, ऐसेही मनुष्य अपनी अज्ञानदशामें जगत् के सकल प्रकारके काम करताहै परंतु ईश्वरका ज्ञान होते ही उनमें इसको कुछ स्वाद नहीं आता, बल्कि अब इसका सर्वसुख प्रभुकी सेवा करनेमें और प्रभुके निमित्त काम करनेमें ही रहताहै।

(३२) जबतक मनुष्य बाजारसे अलग होताहै, तबतक ही कुछएक हो हो ऐसा बड़ाभारी और अस्पष्ट शब्द सुनाई देताहै, परन्तु जब बाजारमें पहुँचजाताहै तब वह कोलाहल सुनाई नहीं पडता, किंतु स्पष्ट देखता है, कि-कोई शाक लेता है, कोई फल लेता है, इसी प्रकार जबतक ईश्वरसे अलग रहता है तबतक यह तर्क वितर्क और विवादके कोलाहल और उलझनमें रहता है, परन्तु जब मनुष्य एकवार ईश्वरके समीप पहुँचजाता है, कि-तत्काल

सब तर्क वितर्क और विवाद बंद होजाता है और इन ईश्वरसंबंधी गुप्त रहस्यों को स्पष्ट तथा ठीकर दृष्टिसे देखता है ।

(३३) जबतक मधुमक्षिका (शुहालकी मक्खी) कमलकी पंखडीके बाहर होती है और उसके मधु को नहीं चखती है तबतक वह गुंजारव करतीहुई उस फूलके चारों ओर घूमा करती है परन्तु जब उस फूलके भीतर बैठजाती है तब उसके अमृत (मधु) को मौन होकर पीती है, ऐसेही जबतकही मनुष्य सिद्धान्तों और मतोंके लिये लड़ता है और विवाद करता है कि-जबतक उसने सच्ची भक्तिका अमृत नहीं पिया है, ज्योंही उस अमृतको पीता है त्योंही शान्त होजाता है ।

(३४) छोटे बालक अपनी इच्छानुसार मकानों में अनेकों प्रकार के खिलौनेसे खेला करते हैं, परन्तु जब उनकी माता भीतर आती है उस समय तुरंत ही उन खिलौनोंको जहांके तहां छोड़कर 'मा-मा' कहते हुए उसके पासको दौड़ आते हैं, तैसे ही तुम

उन्होंने बरफको देखा नहीं है, तैसेही बहुतसे उपदे-शकोंने परमेश्वरके गुण और स्वरूपकी बात पुस्तकों में पढ़ी है परन्तु उनका साक्षात् दर्शन नहीं किया है और जैसे बहुतसे मनुष्योंने बरफ देखा होता है परन्तु खाखा नहीं होता तैसे ही बहुतसे उपदेशकों ने परमात्माकी झाँकी की होती है परन्तु उसके सच्चे तत्त्वको ग्रहण नहीं किया होता है, इस दशामें जिसने बरफको खाखा है वह ही कहसकता है, कि-बरफ कैसा होता है तैसे ही जिसने परमात्माके सहभावका सेवक, मित्र, प्रिय, या तन्मय होकर अनु-भव किया है वह ही कहसकता है, कि-परमात्माका स्वरूप कैसा है और गुण कैसे हैं।

(३७) जो जन्मसे किसानी करतारहा है वह बारह वर्ष पर्यन्त वर्षा न होने पर भी जमीनको जोतना नहीं छोडेगा, परन्तु एक व्यापारी कि-जिसने थोडे ही दिनोंसे खेती करानेका आरंभ किया है वह एक साल भी वर्षा न होनेसे हतोत्साह होजाता है, तैसे ही जो सच्चा भक्त है वह जीवन

पर्यन्त भक्ति करने पर भी प्रभुके दर्शन में सफली-भूत न हो तब भी भक्ति करना नहीं छोडना।

(३८) बडे और स्वच्छ सरोवरमें सिवार उत्पन्न नहीं होती किन्तु छोटे२ जलभरे सडतेहुए नालोंमें होजाती है तैसेही मतभेदरूप सिवार, जिस पक्षके अनुयायी शुद्ध विशाल और निःस्वार्थभाव से कार्य करते हैं उनमें नहीं होती परन्तु जिस पक्षके अनु-यायी अशुद्ध संकुचित (धर्मान्ध) और स्वार्थीभावसे वर्त्ताव करते हैं उनमें दृढ़मूल होजाती है।

(३९) एक महात्मा मार्गमें एक ओरको समाधि लगाए पडा था, उस मार्गसे जातेहुए एक चोरने उस को देखकर अपने मनमें विचारा, कि--यह सोनेवाला मनुष्य चोर है, रात किसी घरमें चोरी करके थक-जानेके कारण यहाँ आकर सोरहा है, पुलिस इसको पकडनेके लिये अब ही यहाँ आवेगी इस कारण मुझे पहिलेसे ही भागजाना चाहिये, ऐसा विचारकर वह भागगया, तुरत ही एक आदमी शराब पियेहुए इस महात्माके समीप आकर कहनेलगा, कि-अरे! अधिक

शराब पीजाने के कारण तू इस गढेमें पडा है मैं तुझसे अधिक होशियार हूँ, गोता नहीं खाऊंगा, अन्तमें एक महात्मा आया और कोई महात्मा समाधिमें पडा है ऐसा विचारकर नीचे बैठ उसके ऊपर हाथ फेरा और उसके पवित्र चरणों को धीरे २ दाबने लगा।

(४०) सांसारिक फलोंकी आशासे बहुतसे धार्मिक और पुण्यकर्म करतेहैं, परंतु जब उनके पास दुर्दैव, सन्ताप और दरिद्रता आतीहै तब यह उस सबको भूलजातेहैं इन लोगोंको ऐसा समझना चाहिये, कि-जैसे कोई तोता रातदिन राधेकृष्ण राधेकृष्ण किया करताहै, परन्तु जब बिल्ली आकर पकडतीहै तब प्रभुके नामको भूलकर की की करने लगता है।

(४१) मक्खियें दूकानों पर बेचनेके लिये धरी हुई मिठाई के ऊपर बैठतीहैं, परन्तु ज्यों ही मार्गको साफ करनेवाला भंगी कूडेकी टोकरी लेकर समीपमेंको जाताहै त्यों ही मिठाईको छोडकर कूडेकी

टोकरी पर बैठजाती हैं परन्तु शहदकी मक्खी कभी भी मलिन वस्तुके ऊपर नहीं बैठती और सदा फूलोंमें से मधुको चूँसा करतीहैं। सांसारिक मनुष्य साधारण मक्खियों की समान हैं, वह किसी समय दिव्य मधुरताका क्षणिक स्वाद लेतेहैं, परंतु मलिन पदार्थोंके लिये उनकी स्वाभाविक वृत्ति तुरत ही उनको जगत्‌रूपी कूडेके टोकरे परको लौटालाती है. इसके विपरीत साधु पुरुष मधुमक्खियोंकी समान नित्य दिव्य सौंदर्य (ईश्वर) के आनन्दमय ध्यान में ही निमग्न रहतेहैं।

(४२) जब ऐसा कहाजाता है, कि-गृहस्थ पुरुष कुटुंबमें रहै, परंतु उसके साथ किसीप्रकारका संबंध नहीं रक्खै और ऐसा करके जगत्‌से भ्रष्ट न होय, तब इस युक्तिका खंडन करनेके लिये एक दृष्टान्त दियाजाताहै, वह इसप्रकार है, कि-एक गरीब भिक्षमँगा किसी समय, घरके कामोंसे संबंध न रखने वाले एक गृहस्थीके पास कुछ धन मांगनेको गया, मांगने पर वह गृहस्थी कहनेलगा, कि-महाराज!

मैं तो कभी धनको छूता भी नहीं, मुझसे माँगने में आप वृथा समय क्यों खोते हैं, परंतु वह भिक्षुक गया नहीं, किंतु बार बार माँगनेलगा, तब उकताकर उसने एक रुपया देनेका अपने मनमें निश्चय करा और उससे कहा, कि--अच्छा महाराज! कलको आइये, देखूंगा, मुझसे जो कुछ होसकैगा दूँगा, तद्-नन्तर घरमें जाकर इस देखनेमात्रके गृहस्थाश्रमीने, अपने गृहकार्यसे उदासीन होनेके कारण जो घरके सब कामकाज की व्यवस्था करती थी उस अपनी स्त्रीसे कहा, कि--हे प्रिये! एक गरीब भिक्षुक बडी तंगीमें है और मुझसे कुछ मांगता है, मैंने उसको एक रुपया देनेका निश्चय किया है इसमें तुम्हारा क्या विचार है? रुपयेका नाम सुनते ही बडे आवेशमें आकर स्त्रीने कहा, कि--अजी तुमतो बडे उदार बनगए हो, रुपया कुछ पत्ते वा पत्थरकी समान बि-नाविचारे फेकदेनेका पदार्थ नहीं है, उसके पतिने मानो माफी मांगता हो ऐसे भावसे फिर कहा, कि-प्रिये! वह बड़ा दरिद्र है उसको एक रुपयेसे कम नहीं

देना चाहिये, स्त्रीने कहा कि--नहीं मेरे पास इतना देनेको नहीं है, लो मेरे पास एक दुअन्नी है, यह उसको देना चाहो तो देदेना। ठीक ही है-अपनेआप दुनियादारीकी बातोंसे विरक्त होनेके कारण इसका कुछवश ही नहीं था अतः स्त्रीने जो कुछ दिया वही दोआना दूसरे दिन भिक्षुकको देदिया, ऐसे विरक्त गृहस्थी वास्तवमें स्त्रियोंके वशीभूत होतेहैं और ऐसे यह मनुष्य जातिके बड़े दीन मनुष्य हैं।

(४३) बाँस में बँधे जाल के चौकठेमें चमकतेहुए पानीको देखकर छोटी २ मछलियें खुशी से उसमें चलीजाती हैं, परन्तु एक समय उसमें पहुँचीं कि-फिर बाहरको नहीं निकलसकतीं और फँसजाती हैं, इसीप्रकार मूर्ख मनुष्य संसारकी झूठी चमचमाहट से मोहित होकर खिचजाते हैं परन्तु जैसे जालमें घुसना उसमेंसे निकलनेकी अपेक्षा सहल है तैसे ही संसारमें एक साथ घुस बैठना उसमेंसे छूटनेकी अपेक्षा सहल है।

(४४) लोग सदा जगत्में रहतेहुए मुक्ति प्राप्त

करनेके दृष्टान्तस्वरूपसे जनक राजाका वृत्तांत कहा करतेहैं, परंतु मनुष्यजातिके समग्र इतिहासमें यह एक ही दृष्टांत है, यह दृष्टांत नियम नहीं है किंतु अपवाद है, साधारण नियम यह है, कि कोई भी मनुष्य जबतक विषय और तृष्णाको नहीं छोड़ता है तबतक अपनी मुक्तिको नहीं पासकता, तुम जनक हो ऐसा न मानतेहुए अनेकों युग बीतगए परन्तु जगत् ने अबतक दूसरे जनकको उत्पन्न नहीं किया।

(४५) भक्तका हृदय सूखी दीयासलाईकी समान है, और ईश्वर के नामका सहज उच्चारण उसके हृदयमें प्रेमकी अग्निको प्रज्वलित करता है, परंतु विषय और तृष्णाके जलमें भीगाहुआ संसारी पुरुषका मन भीगीहुई दीपकसलाई की समान है और अनेकों बार इससे ईश्वरका ज्ञान कहो, परंतु कभी भी उसमें (ज्ञान वा भक्तिका) वेग लगे इतनी गरमी नहीं आसकती।

(४६) जैसे पत्थरमें पानी प्रवेश नहीं करता है ऐसे ही धार्मिक उपदेश सांसारिक मनुष्यके हृदय पर असर नहीं करसकता।

(४७) केवल सांसारिक मनुष्यका लक्षण यह है, कि--वह सर्वशक्तिमान् ईश्वरके स्तोत्र, कथा, गुणकीर्त्तन आदिको नहीं सुनता, इतना ही नहीं, किंतु दूसरोंको भी सुननेसे रोकता है और धार्मिक पुरुष तथा धार्मिक सभाओंको गालियें देता है और प्रभुप्रार्थनाकी हँसी करता है।

(४८) जैसे कील पत्थरमें नहीं बैठसकती, मट्टी में सहजमें बैठजातीहैं, तैसे ही धार्मिक मनुष्यका उपदेश सांसारिक मनुष्यके मन पर असर नहीं करता, किंतु ईश्वरके ऊपर श्रद्धा रखनेवाले पुरुष के हृदय पर तत्काल जमजाता है।

(४९) जबतक नीचे आग होतीहै तबतक ही दूध उफनता है और आग निकाल लो तब शांत होजाता है, तैसे ही नए शिष्यका हृदय जबतक वह (ज्ञान आदि) योग करताहै तबतक धर्मोत्साहसे उबलता है, परंतु पीछेसे शांत होजाता है।

(५०) तीनप्रकारकी पुतलियें हैं-एक मीठेकी दूसरी कपड़ेकी और तीसरी पत्थरकी। यदि इन

पुतलियोंको पानीमें डुबोवें तो मीठेकी गलजायगी, इसका आकार जाता रहैगा, दूसरी कपड़ेकी पानी बहुत चूँसेगी परंतु अपने आकारको बनारक्खेगी, परंतु तीसरी पत्थरकी पुतली अपनेमें पानीका प्रवेश ही नहीं होनेदेगी। पहिली पुतली वह है, कि–जो मनुष्य अपने आत्माको सर्वव्यापी और सर्वस्वरूप परमात्मामें लीन करदेताहै और उसके साथ एक होजाता है, वह मुक्त पुरुष है। दूसरी पुतली वह है जो सच्चा भक्त दिव्य आनन्द और ज्ञानसे भरा-रहताहै और तीसरी पुतली वह है जो सांसारिक मनुष्य यथार्थ ज्ञानकी बूँद भर भी ग्रहण नहीं करताहै

(५१) दो मनुष्य बागमें गए, उनमसे दुनियादारीमें चतुर मनुष्य, ज्योंही बागके दरवाजेमें घुसा, त्योंही तहांके आमके वृक्ष और उनपर लगेहुए आमोंकी तथा संपूर्ण बागकी क्या कीमत होगी, यह हिसाब लगाने लगा परंतु दूसरा उस बाग के स्वामीके पास गया उसके साथ जान पहिचान की और एकान्तमें आम के पेड़के नीचे जा उसके स्वामीकी आज्ञा लेकर फल

तोडे और खानेलगा, अब इन दोनोंमें अधिक चतुर कौन है ? आम खानेसे तुम्हारी क्षुधा शान्त होगी, पत्ते गिनने और झूठा हिसाब लगानेसे क्या लाभ है ? कुतर्की मिथ्याभिमानी पुरुष, सृष्टि क्यों हुई, इत्यादि खोज करनेके मिथ्या उद्योगमें ही पड़ा रहता है और प्रवीण निराभिमान मनुष्य सृष्टिकर्त्ताके साथ पहिचान करता है और इस जगत् में परमसुख भोगता है।

(५२) गिद्ध पक्षी हवामें ऊँचा चढजाता है, परंतु उतने समयमें बराबर सडेहुए मुरदोंकी खोजके लिये श्मशानकी ओर ही नीचेको देखा करता है, तैसे ही पुस्तकके पंडित परमात्मज्ञान के विषय में वाणीकी चपलतासे बहुतसे शब्द बोलते हैं, परन्तु वह सब नीची बातें ही हैं, क्योंकि उस सब समयमें उनका मन तो धन, सन्मान, हुकूमत आदि अपनी पंडिताईका (झूठा) बदला कैसे प्राप्त हो इसकी चिंतामें ही लगा रहता है।

(५३) एक समय बर्दवानके महाराजकी सभामें

पण्डितोंमें परस्पर विवाद हुआ, कि--शिव और विष्णुमें कौन बड़ा है ? कितनो ही ने शिवको बड़ा कहा और और कितनो ही ने विष्णुको, जब विवाद बहुत ही गरम होगया, तब एक चतुर पंडितने महाराजसे कहा, कि--हे राजन् ? मैं शिवजी से नहीं मिला हूँ और न मैंने विष्णुको ही देखा है, इस दशामें दोनोंमें कौन बडा है, यह मैं किसप्रकार कह सकता हूँ ? इतना कहते ही विवाद बंद होगया क्योंकि-वास्तवमें किसीने भी उन देवताओंको नहीं देखा था, इसकारण एक देवताकी दूसरे देवताके साथ समता नहीं करना चाहिये क्योंकि--जब मनुष्य वास्तवमें देवताओंका दर्शन पाताहै तब ही समझता है कि--सब देवता एक ही ब्रह्मके स्वरूप हैं.

(५४) किसी ब्राह्मणने एक बाग लगवाया और रातदिन उसकी सम्हालमें ही लगा रहता था, एक दिन एक गौ चुपचाप बागमें घुसआई और एक उभरतेहुए आमके पौधे को, जिसको कि--इस ब्राह्मणने बड़े उद्योगसे सींचा था खागई ब्राह्मणने अपने

प्यारे पौधेको इस गौसे खाया हुआ देखकर उस गौ के ऊपर ऐसे जोर से लट्ठ जमाया, कि उस पीडासे वह मरगई,बात दावानलकी समान सर्वत्र फैलगई, कि-ब्राह्मणने पवित्र प्राणी गौकी हत्याकी है। वह ब्राह्मण वेदान्ती कहलाता था और जब उसके ऊपर यह पाप लगायागया तब उसने कहा, कि-नहीं मैंने गौको नहीं मारा है, मेरे हाथोंने मारा है और इन्द्र इनका मुख्य देवता है, इस लिये गौ मारनेका पाप किसी को लगसकता है तो वह इन्द्र देवताको लगेगा, मुझे नहीं लगसकता।

इन्द्रने स्वर्गमेंसे यह सब सुना और वह बूढे ब्राह्मण का रूप रख कर बागके स्वामीके पास आया और कहनेलगा, कि-भाई! यह बाग किसका है? ब्राह्मणने कहा-मेरा है, इंद्रने कहा, बाग सुंदर है, तुम्हारा माली चतुर है, क्योंकि-देखो कैसी सुंदरता और खूबीके साथ उसने वृक्ष लगाये हैं! ब्राह्मणने कहा, कि-भाई! यह भी मैंने ही किया है, वृक्ष मेरी अपनी देख भालमें और मेरे कहनेके अनुसार बोये

जाते हैं, इन्द्रने कहा--ठीक है, तुम बड़े चतुर मालूम होते हो परन्तु यह सड़क किसने बनाई है! इसकी रचना बडी ही चतुरता से कीगई है, ब्राह्मणने कहा यह सब मेरा ही किया हुआ है, तब इन्द्रने हाथ जोड़ कर कहा, कि--जब यह सब तुम्हारा है और इस बागमें जो कुछ किया है उस सबकी प्रशंसा भी तुम ही लेते हो, तब गौको मारनेके लिये इन्द्रको अपराधी ठहराओ यह तो बिचारे इन्द्रके ऊपर अनर्थ करते हो।

(५५) साधारण मनुष्य गाल फुला २ कर धर्म की बातें किया करतेहैं पर उसमेंका एक कणभर भी आचरण नहीं करते परंतु जो ज्ञानी पुरुष है वह, थोडा बोलता है और उसका समस्त जीवन धर्माचरणरूप होता है।

(५६) एक समय देवर्षि नारदजीको अभिमान हुआ, कि--मुझसा ईश्वरभक्त कोई नहीं है, प्रभु विष्णुभगवान ने नारदजीके हृदयकी बातको जान कर कहा, कि-- हे नारद! तुम अमुक स्थान पर जाओ

तहां मेरा एक बड़ा भक्त है, उसके साथ जान पहि-
चान करो, नारदजी तहां गए और उस किसान को
ढूंढलिया, वह किसान रोज प्रातःकाल ही उठकर एक
ही समय हरिका नाम लेता था और सारे दिन अपना
हल लेकर जमीन जोतता था, रात को फिर एकबार
हरिका नाम लेकर सो रहता था। नारदने अपने मन
में विचारा, कि-यह गमार ईश्वरका भक्त कैसे हो-
सकता है ? मैं इसको सांसारिक कामोंमें गुथाहुआ
देखताहूँ और धार्मिकपुरुषकेसा तो इसमें कोई चिन्ह
ही नहीं है। तदनन्तर नारदजी तहांसे विष्णुभग-
वान्‌के पास गए और उस किसानको जैसा समझा
था सब कहसुनाया, भगवान्‌ने कहा, कि हे नारद !
इस तेलके भरे प्यालेको लिये चलेजाओ और नगर
भरकी प्रदक्षिणा करके प्यालेसहित लौटआओ, पर-
न्तु ध्यान रखना, कि-इस प्यालेमेंके तेलकी एक बूँद
भी भूमि पर न गिरै, नारदजीने ऐसा ही किया और
लौटकर आगये, तब उनसे भगवान्‌ने बूझा, कि-
क्यों नारदजी ! तुमने प्रदक्षिणा करते समय मेरा

स्मरण कितनी बार किया ? नारदजीने उत्तर दिया, कि-हे प्रभो एकबार भी नहीं, और ऐसा मैं कर भी कैसे सकता था, क्योंकि-मेरा ध्यान तो तेलसे लबालब भरे प्याले की ओर था, तब भगवान्ने कहा कि-इस एक ही तेलके प्यालेने तेरे ध्यानको इतना पलायमान कर डाला ? कि-तू मुझको सर्वथा भूल ही गया तब जो वह ग्रामीण बडे भारी कुटुंबका भार उठाता हुआ भी नित्य दो बार मेरा स्मरण करता है तो क्या सच्चाभक्त और धन्यवाद का पात्र नहीं है ? ।

(५७) प्रेमी भक्त अपने ईश्वरको अपने समीपसे समीप और प्यारेसे प्यारे सम्बंधीकी समान मानता है । देखो वृन्दावनकी गोपिकाओंने श्रीकृष्णजीको जगत् का नाथ (जगन्नाथ) मानकर नहीं, किंतु अपने ही नाथ (गोपीनाथ) रूपसे देखाथा ।

(५८) मच्छी मारनेवालोंकी एक टोली संध्याके समय बाजारसे निबटकर घरको जारही थी, रात होते २ मार्गमें आँधी वर्षाका बडा तोफान आगया, इसकारण समीपके एक मालीके घरमें आश्रय लिया

मीलाने कृपा करके इनको सोनेके लिये एक कोठरी बतादी, जहाँ कि-उस की ग्राहकोंके लिये सुंदर सुगंधित फूलोंकी टोकरी धरी थी, उस कोठरीकी सुगंधित पवन मछेरोंके स्वभावके प्रतिकूल थी, इस-कारण उनको क्षणभरको भी नींद नहीं आई, तब उन मेंसे एक आदमीको उपाय सूझा, कि-सब अपनी२ मछलियोंकी टोकरी अपनी२ नासिकाके सामने धर कर सोरहैं, जिससे पुष्पोंकीगन्ध नासिकामें आनेसे रुककर नींद आजायगी, तदनन्तर ऐसा ही करनेसे वह सब नींदमें खुर्राटे भरनेलगे, ऐसे ही जो दुर्व्य-सनमें पडे होतेहैं उन सबोंके ऊपर वास्तवमें ऐसा ही असर होताहै।

(५९) एक पालेहुए नौलेका भट्टा एक घरकी दीवारके ऊपर ऊँचे स्थानमें था, डोरीका एक सिरा इसके गलेमें बँधा था और दूसरे सिरेमें एक पत्थर बँधाहुआ था, नौला उस बंधनके साथ दीवानखाने और आँगन में दौडता था, परंतु जब किसीसे डरता था तो दौड़कर भीत के ऊपर अपने भट्टेमें जा छुप-

कता था, परंतु वहां अधिक समय नहीं ठहरसकता था, क्योंकि-डोरीमें बँधे पत्थरका बोझा उसको नीचेकी ओरको खेंचताथा इसकारण भट्टेको छोडना पडता था, इसीप्रकार मनुष्यका घर ऊँचे सर्वशक्तिमान् ईश्वरके चरणके समीप है, जब २ विपत्ति और दुर्दैवसे यह भयभीत होताहै तब२वह इसका ईश्वर जो इसका घर है उसके वहाँ जाताहै, परंतु तुरंत ही इसको जगत्के अनिवार्य आकर्षणोसे नीचेको आना पडताहै ।

(६०) सर्प बडा ज़हरीला प्राणी है पकडने के लिये जानेवालेको यह डसलेता है, परंतु जो मनुष्य सर्पके मंत्रको जानता है वह सर्पको वस्त्रके समान शरीर में लपेटलेताहै, ऐसे ही जिसको आत्मज्ञानरूपी मंत्र प्राप्त होजाता है, उसको काम क्रोधरूपी सर्प कभी नहीं डससकते ।

(६१) जब मनुष्य नीचे कही हुई अवस्थाओंमें से एक का भी साक्षात्कार करलेताहै तब मुक्त (पूर्ण-सिद्ध) होजाता है, वह अवस्था यह हैं (१) मैं

स्वरूप हूँ. (२) यह सब तू है, (३) तू स्वामी और मैं सेवक हूँ।

(६२) कमरे में दीपक आते ही सैंकड़ों वर्षका अन्धकार दूर होजाता है ऐसे ही असंख्यों जन्मोंका इकट्ठा हुआ अज्ञान और पापसमूह सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी कृपादृष्टिके एक ही कटाक्ष के आगे नष्ट होजाता है।

(६३) पुलिसका सिपाही चोर लालटेनसे जिस के ऊपर लालटेनका उजाला डाले उसीको देखसक्ता है परन्तु उसका प्रकाश वह जबतक अपनी ओरको न फेरे तबतक उसको कोई नहीं देखसकता, ऐसे ही ईश्वर सबको देखता है, परन्तु वह कृपा करके जबतक अपने आप ही प्रकट नहीं होता तब तक उसको कोई भी नहीं देखसकता।

(६४) पन्थों तथा संप्रदायोंसे विरोध मत रक्खो हरएक को अपने २ पंथमें भक्ति और सदाचरण श्रद्धा के साथ करने दो, श्रद्धा ही ईश्वरको पानेका मुख्य साधन है।

(६५) हे उपदेशकों ! क्या तुमने उपदेश करने के अधिकार की छाप ली है !, जैसे दीनसे दीन प्रजाका मनुष्य राजाकी ओरकी छापको धारण करता है तब मान और प्रताप बढ़ता है, लोक उसकी बात मानते हैं तथा वह अपनी राजकीय चपरास दिखाकर बलवेको शान्त करदेता है, तैसे ही हे उपदेशको ! तुमको पहिले ईश्वरसे आज्ञा और ईश्वर प्रेरित ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जबतक तुमको ईश्वर प्रेरित ज्ञान प्राप्त नहीं होगा, जबतक तुम सदाचरण और तपस्या करके निर्मलान्तःकरण नहीं होजाओगे तबतक तुम सम्पूर्ण जीवनभर उपदेश किया करो परन्तु वह वृथा गाल बजाना ही है

(६६) जब फल पकजाताहै तब आपही गिरपडता है और बडा मीठा स्वाद देताहै, परंतु जब वह कच्चा तोडकर पालमें पकायाजाताहै तब वह उतना स्वादिष्ट नहीं होता, तैसे ही जब मनुष्य पूर्णज्ञान परमात्मभावको पाजाताहै, तब उस का ज्ञातिभेदपालन आप ही दूर होजाताहै, परन्तु जब

तक ज्ञानकी प्राप्तिमें कच्चा रहता है तबतक उसको ज्ञातिभेद आदिका पालन करना ही चाहिये ।

(६७) जब घाव पकजाताहै तब उसमेंका गला हुआ भाग आप ही निकलजाता है, परन्तु उसको कच्चा फोडदियाजायतो उसमें को शरीरका पोषक रुधिर निकलकर दुर्बल करदेता है ऐसे ही जब मनुष्य परिपूर्ण ज्ञानको पाजाता है तब उसमें से जातिभेद आप ही दूर होजाता है, परन्तु अज्ञानी पुरुष जातिभेदको तोडनेसे अपने रुधिर और शुद्ध भावकोदूषित करडालता है ।

(६८) प्रश्न—क्या यज्ञोपवीत पहरना ठीक है ? उत्तर--जब आत्मज्ञान होजाताहै तब सब बंधन आप ही टूटजाते हैं, ब्राह्मण वा शूद्र, उच्च वा नीच जातिका भेद नहीं रहताहै, इस दशामें द्विजत्वका चिन्ह पवित्र उपवीत आप ही जातारहता है, परंतु जबतक मनुष्य की दृष्टिमें भेदभावरहै तब तक द्विजत्वका चिन्ह उपवीत कदापि नहीं त्यागना चाहिये ।

(६९) जैसे कोई मनुष्य वकीलको देखता है तो स्वाभाविक ही उसको मुकद्दमे और दावेकी याद आती है तैसे ही किसी पवित्र भक्तको देखकर मनुष्यको ईश्वर और परलोक की याद आती है।

(७०) फलोंसे भराहुआ वृक्ष सदा नमता है तैसे ही यदि तुझको बड़ा होना हो तो नम्र हो।

(७१) तराजूका भारी पलड़ा नीचेको नमताहै और हलका ऊपरको ऊँचा होजाता है, तैसे ही गुण और शक्तिमान् पुरुष सदा नम्र होताहै, परन्तु मूर्ख सदा मिथ्याभिमानसे फूला ही रहता है।

(७२) कर्त्ता के बिना कर्म्म नहीं होसकता जैसे— किसी निर्जन वन में देवता की मूर्तिहै और मूर्ति बनानेवाला वहां उपस्थित नहीं किन्तु उसके बनाने वाले कारीगर के अस्तित्व (होने) की वहां अनुमिति हो जाती है। उसी प्रकार इस विश्व के दर्शनसे सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का ज्ञान होता है।

(७३) किसी मनुष्य का एक अति मनोहर उद्यान (बाग) है। एक दर्शक ने उसमें जाकर देखा कि इस

में कहीं आम, कहीं आडू और कहीं नीबू नारङ्गी आदि के पेड़ों की पंक्ति खड़ी हुई हैं। कहीं गुलाब, चमेली, मोगरा और मोतिया प्रभृति नाना जाति के खिले हुए पुष्पों की सुगन्ध का विस्तार कर स्थान को सुवासित कर रहे हैं। कहीं पींजरे में बैठे हुए तोता मैना समयोचित ध्वनि से श्रवणसुख को बढ़ा रहे हैं। कहीं लोहे के मजबूत पींजरों में रुके हुए, सिंह व्याघ्र भल्लूक और हस्ती आदि वनविहारी भयानक जीव निजस्वतन्त्रता खोकर उदरपूर्तिके लिये परतन्त्रता का नाटक दिखा रहे हैं और स्थान स्थान पर नाना प्रकारकी पुतली खड़ी हुई शोभा दे रही हैं दर्शक उद्यान की शोभा देखकर क्या विचार करेगा उसके मन में क्या यह भाव उदय होगा कि यह उद्यान आपसे आप बन गया है? इसका सृष्टिकर्त्ता कोई भी नहीं है! नहीं, ऐसा विचार कोई भी बुद्धिमान् नहीं कर सकता। उसी प्रकार इस विश्व उद्यान में जिस स्थान पर जो स्वाभाविक दिखाई दे रहा है वह वास्तव में स्वभावप्रसूत (प्रकृतिनिर्मित) नहीं

है, विश्वकर्मा के हाथकी कारीगरी है।

(७४) हां! इस विश्वोद्यान को देखकर ही लोग पागल होजाते हैं, इस उद्यानकी एक पुतलीही ऐसी है जो योगी ऋषियों तक के मनों को खैंच रही है, साधारण लोगों की तो कुछ बातही नहीं! पर उद्यानाधिपति के दर्शन के लिये कितने जन लालायित होरहे हैं।

(७५) ईश्वर अनन्त, जीव खण्ड है, अनन्त की सीमाको अन्तविशिष्ट जीव किस प्रकार पूर्णरीतिसे निर्धारण कर सकेगा? अनन्त का निर्णय करने चलोगे तो अपना ही कुछ ठौर ठिकाना न रहेगा। अस्तित्व तक लुप्त हो जायगा। जैसे—एक दिन नूनकी मूर्ति (डली) समुद्र का जल नापने गई थी। समुद्र में क्या है, कितना जल है. खोज करते २ वह आपही गल कर जल में मिलगई। तब फिर समुद्र में जल का परिमाण कौन करेगा।

(७६) ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। जब नित्य शुद्ध बोधरूप, केवलात्मा साक्षीस्वरूप है, तब वह ब्रह्म पद

वाच्य है। और जिस समय गुण या शक्ति युक्त होकर रहता है, तब उसको ईश्वर कहा जाता है।

(७७) ब्रह्म की प्रकृति (असल अवस्था) क्या है? अर्थात् वास्तवमें गुणरहित है कि सब गुणोंकी खानि है? यह मनुष्य किस प्रकार निश्चय कर सकता है? वही सगुण वही निर्गुण और वही गुणातीत है। ब्रह्म जो वस्तु है, ईश्वर भी वही वस्तु है। जैसे-मैं ही एक समय दिगम्बर (नग्न) और मैं ही एक स-समय साम्बर (वस्त्र सहित) हूं।

(७८) जैसे बरफ और जल, इनकी दोनों प्रकारकी अवस्था हैं, एक कठिन आकार धारी एवं दूसरी तरल और आकारहीन है। जल का यह परिवर्तन उत्ताप (गरमी) और उसके अभावरूप हिमशक्ति द्वारा सिद्ध होता है। इसी प्रकार साधक (भक्त) के ज्ञान और भक्तिके न्यूनाधिक्य से ब्रह्म की साकार और निराकार अवस्था हो जाती है।

(७९) ब्रह्म का साकार रूप जड़-पदार्थ-निर्मित अर्थात् काठ, मृत्तिका अथवा किसी प्रकारकी धातुसे

बनाहुआ नहीं है। उसका रूप क्या है? और किस प्रकार के पदार्थों से बना है सो कथन की सामर्थ्य से बाहर है। वह पदार्थ इस जड़ जगत् में नहीं जो लिखाजाय। हां, 'ज्योतिर्घन' यह कहा जा सकता है किन्तु वह किस प्रकार की ज्योति है सो चन्द्रसूर्य की ज्योति के साथ तुलना नहीं हो सकती। तात्पर्य यह कि उसका रूप अनुपम और वचनातीत है। यदि तुलना करनी हो तो उसकी तुलना उसी के साथ हो सकती है॥

(८०) काष्ठ, मृत्तिका और अन्यान्य धातुनिर्मित साकार मूर्तियां, नित्य साकार की प्रतिरूप (प्रतिनिधि) मात्र हैं जो लोग जड़मूर्ति की उपासना करते हैं वे लोग वास्तव में जड़ोपासक नहीं हैं। कारण उन का उद्देश्य जड़ नहीं है। पत्थर अथवा लकड़ी ही का उनका ज्ञान हो तो फिर उन्हें उसी का लाभ भी होवे। किन्तु ईश्वरभाव होने से परिणाम में ईश्वर लाभ ही हुआ करता है।

(८१) जो लोग ईश्वरप्राप्ति के लिये साधन

भजन करना चाहते हैं, उन्हें किसी प्रकार की कामिनी या काञ्चनका सम्बन्ध न करना चाहिये। इनके संग में किसी कालमें किसी को भी सिद्धा-वस्था प्राप्ति का उपाय नहीं है।

(८२) जो एक बार इन्द्रियसुख का आस्वादन कर चुके हैं, उनको जिससे फिर वह भाव उद्दीपन न हो इस प्रकार सावधानता से रहना चाहिये। कारण कि आंखों से देखने पर और कानों से श्रवण करने पर मन में चञ्चलता हो जाती है। एक बार मनमें किसी प्रकार का संस्कार उत्पन्न हो जाने पर उसको वह चिरजीवन तक विस्मरण नहीं होता। एक दिन एक बधिया बैल को एक दूसरे बैल पर चढ़ना देख खोज करने पर उसका कारण जाना गया कि उस को जिस समय बधिया किया गया था, उससे पूर्व उसको स्त्रीसंगज्ञान होगया था।

(८३) जिस प्रकार दुर्ग के मध्य में रह कर, प्रबल शत्रु के साथ अल्प सेना द्वारा बहुत दिनों तक युद्ध कर सकते हैं, उसमें बलक्षय होने की अधिक

सम्भावना नहीं रहती और प्रथम से संग्रह किये हुए भोज्य पदार्थोंकी सहायता से भूख का क्लेश अथवा उसके फिर से संग्रह करने की शीघ्र ही चिन्ता नहीं होती, उसी प्रकार संसार में रहने पर साधन भजन की विशेष अनुकूलता हुआ करती है ।

(८४) मन ही सब कामों का करने वाला है। ज्ञानी कहो चाहे अज्ञानी सब मनही की अवस्था है। सब मनुष्य मनद्वारा ही बद्ध और मन द्वारा ही मुक्त होते हैं। मनही से असाधु और मनही से साधु मन ही से पापी और मनही से मनुष्य पुण्यवान् है- इस लिये मन में ईश्वर को स्मरण रखने से सांसारिक जीवों को फिर किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रहती ।

(८५) जो मनुष्य अपने अभिमान और बड़प्पन को प्रगट न कर, सर्वदा दया धर्मके कार्य्य करे और जिसके शत्रु प्रबल न होसकें, आहार विहारमें जिस के आडम्बर किम्वा अनादर न हो, स्वभाव ही से जिसका ईश्वर में पूर्ण प्रेम दिखाई दे, उस पुरुषको

सावधानी रखना चाहिये।

(८६) रजोगुण में अहङ्कार का अभिमान बहुत होता है। जिसमें षड् रिपु (काम, क्रोध, आदि) की पूरी २ क्रिया भी हुआ करती है, आहार विहार में अत्यन्त आडम्बर और शरीर के प्रति मानसिक रुचि रहते हुए अपनी इच्छाकी पूर्ति अधीन रहा करती है।

(८७) तमोगुण में रजोगुण के सब लक्षण पूरी तरह रहते हैं और इसके सिवाय जड़ताओं की भी पूरी सफलता देखनेमें आती है।

(८८) जिस पुरुष में जिस गुण की प्रधानता है उसके कार्य भी वैसेही हुआ करते हैं। इन गुणों के भेद से प्रत्येक मनुष्य के कार्यके साथ प्रत्येक का भेद दिखलाई देता है। इसलिये सात्विक कार्य में एक पलकि के भाव से उसको बांधना बन नहीं सकता।

(८९) जो पुरुष जिस भाव से, जिस नाम और जिस रूप में एक अद्वितीय ईश्वर को जानके साधन करेगा, उसको ईश्वर लाभ होगा ही होगा।

(९०) हां, सही है। जैसे [illegible] कालीजीके मंदिर

में कोई नौका द्वारा कोई गाड़ी से और कोई पैदल ही आता है, भिन्न २ मार्ग और भिन्न २ उपाय से भिन्न २ पुरुष अन्त में एक स्थानमें आकर उपस्थित होजाते हैं वैसे ही भिन्न २ पुरुषों को भिन्न २ मत के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हुआ करती है, वे सबों के एकमात्र (गम्य) हैं।

(९१) मुक्तिदाता एक ही है। संसार क्षेत्र में जिसको जब विराग उत्पन्न होता है, अन्तर्यामी भगवान् उसको जानते हैं और वे उस भक्त की जैसी इच्छा होती है वैसी ही व्यवस्था करदेते हैं।

(९२) कलिकाल में ईश्वर का नाम ही एकमात्र साधन है और और युगों में अन्य प्रकार के साधन का नियम था। इस समय उन सब साधनों में मनुष्य सिद्ध नहीं होसकता, कारण कि जीवकी परमायु ही अति अल्प है, तिसपर नाना प्रकार के रोग और शोक से लोग जीर्ण शीर्ण होरहे हैं, कठोर तपस्या किस प्रकार करसकते हैं? इसलिये नारदीय भक्ति मत ही सब से अच्छा है।

(९३) यदि ईश्वरका ही दर्शन न हुआ तो देखा ही क्या? यदि ईश्वरसे चर्चा बातें नहीं हुई तो हुआ ही क्या? जिसकी माया इतनी सुंदर है, कि वर्णन नहीं होसकता, जिसका ध्यान करना ही आश्चर्यकारक है वह स्वयं न जाने कितना सुंदर और कितना आह्ला-दक होगा? ।

(९४) ईश्वरका दर्शन करनेको कौन नहीं ललचाता? परन्तु उसके लिये निरन्तर आंसू कौन बहाता है? लोग धन, स्त्री, बेटा बेटीके लिये एक दिन कुछ खाना न खाय तो चिल्लाते चिल्लाते नहीं रहता, परन्तु यह समझकर आंखोंसे एक बूंद भी नहीं टपकाता, कि हा! अबतक भगवान्का दर्शन नहीं हुआ, जो व्याकुल होकर रोना जानता है वह ही भगवान्को पासकता है।

(९५) आत्मा सत्यस्वरूप है, अहंकारके परदेके आड़ होनेसे नहीं दीखता है, उस अहंकारके दूर होनेसे ही आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है और आत्मज्ञानसे परमात्माके साथ ऐक्य होता है।

(९६) पहिले अभिमानको त्यागना चाहिये, अभिमान आत्मज्ञान के द्वारपर बडेभारी वृक्षकी समान खडा है, जब ज्ञानरूप कुल्हाडीसे उसको काटडाला जायगा तब ही परमात्माका साक्षात्कार हो जायगा ।

(९७) जैसे जलके हिलते समय उसमें सूर्यका प्रतिबिंब नहीं दीखता स्थिर जलमें ही दीखता है, तैसेही मनके स्थिर न होनेसे भगवान्का प्रतिबिंब नहीं दीखसकता, काम क्रोधादिके द्वारा अधिक श्वासप्रश्वास से मन चंचल होजाता है, इसकारण श्वासप्रश्वासके कारण क्रोधादिको जितना घटाया-जाय घटाओ तब मन स्थिर होकर भगवान्का दर्शन होगा ।

(९८) जिस प्रकार गीली लकडी आगमें धीरे २ रसहीन होती चलीजाती है, ऐसे ही जो कोई तेजके साथ ईश्वरको भजेगा, उसका कामिनी काञ्चनरस आप ही सूखजायगा ।

(९९) एक मनुष्य कहीं कुआ खोदरहा था उसके

दूसरेने कहा कि–यहांका जल अच्छा नहीं है तथा कुछ दूर नीचे की मट्टी कडी है, यह सुन वह कुएका खोदना बंदकर दूसरे स्थानपर गया, तहां भी उस को इसीप्रकार रोकने वाले मिले, इसप्रकार इधरसे उधर घूमते२ वह बडा दुःखी होगया, तब उसने यह निश्चय किया, कि अब चाहे सो हो, किसीकी बात पर ध्यान नहीं दूँगा, जहां मेरा जी चाहेगा वहां ही कुआ खोदूँगा, तदनन्तर एक स्थान पर कुआ खोदने लगा, इसबार भी यद्यपि उसको रोकनेवाले मिले परंतु उसकी एकाग्रता में कुछ भी कमी नहीं आई और कुआ खोद जल पीकर आनन्द से जीवन बिताने लगा, ऐसे ही पारलौकिक कार्योंमें अनेकों विघ्न पडते हैं जो उनसे धर्मकर्म छोडबैठते हैं वह दुःखी होते हैं और जो विघ्नों के शिर पर चरण धरकर धर्मसाधन करते हैं वह भगवान्‌का साक्षात्काररूप परमानंद पाते हैं।

(१००) अमली होके करे ध्यान, गृही हो बतावे ज्ञान।
योगी होके कूदे भ×, ये तीनों कलियुगके ठग।



अर्थात्-जो सुलफा, भंग, शराब आदि पीकर समाधि लगानेका ढोंग करै, जो संसारमें परम मग्न होकर वैराग्यकी बातें बघारै, और जो योगी यति बनकर स्त्रीविहार करै, इन तीनोंको कलिकाल का ठग जानै।

(१०१) एक समय एक बुद्धिमान् ब्राह्मण एक राजाके पास गया, और कहा, कि-हेराजन्! सुनो मैं शास्त्रोंको जानताहूँ, मेरी इच्छा है, कि-तुम्हें भागवत सुनाऊँ, राजा चतुर था, उसने विचारा, कि-जो भागवत जानता होगा वह राजमहलमें आकर धन और मान पानेकी अपेक्षा अपने आत्माको पहिचाननेका उद्योग करेगा, इस कारण उसने उत्तर दिया, कि-महाराज! मुझे मालूम होता है, तुमने आप ही भागवतको ठीक २ अभ्यास नहीं कियाहै; मैं तुमको अपना गुरु बनानेकी; प्रतिज्ञा करता हूँ, परन्तु आप पहिले जाकर ठीक २ अभ्यास कर आइये, तब तो जिस ग्रंथका इतने वर्षोंतक मैंने बार२ पाठ किया, उसके विषयमें यह मूर्ख राजा कहता है,

कि-तुमने ठीक २ अभ्यास नहीं किया, सो यह राजा कैसा मूर्ख है, ऐसा अपने मनमें विचार करता हुआ वह ब्राह्मण चलागया, फिर विचारा, कि-राजाके ऐसा कहनेमें कुछ तत्त्व अवश्य है, यह विचारकर घरमें जा किवाडें बंद करके पहिले से भी अधिक परिश्रमके साथ अभ्यास करनेलगा तब तो धीरे२ उसकी बुद्धिमें गूढ अर्थ फुरनेलगा, कि-धन, मान राज्य और सभा आदि तो असार पदार्थ हैं, तदनन्तर धन और कीर्तिके आगे दौडनेकी तृष्णा उस की खुलीहुई दृष्टिके आगेसे जातीरही, उस दिनसे वह ईश्वरका भजनकर मोक्षकी प्राप्ति का उद्योग करनेमें तत्पर होगया और राजाके पास फिर कभी नहीं गया, थोडे दिनोंके बाद राजाको इस ब्राह्मण की याद आई और अब ब्राह्मण क्या करताहै, यह देखनेके लिये उसके घरगया, ब्राह्मणको दिव्य ज्ञान और भक्तिसे देदीप्यमान देखकर चरणोंमें गिरपडा और कहनेलगा, कि-मुझे मालूम होताहै, कि-अब आपको शास्त्रका ठीक अर्थ मालूम होगया, यदि

आप अब कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनावें तो मैं तयार हूँ ।

(१०२) जैसे बरसातका पानी बाघ गौ आदि अनेकों आकारके नलोंमेंको छतोंपर से नीचे गिरता है और बाघ वा गौके मुखमेंसे निकलताहुआसा प्रतीत होताहै, परन्तु वास्तवमें वह आकाशमेंसे ही गिरताहै,इसीप्रकार ऋषिमुनियोंके मुखमेंसे निकला हुआ जो शास्त्रज्ञान है वह मनुष्योंका उनका अपना कहाहुआ प्रतीत होताहै, परंतु वास्तवमें वह ईश्वर के समीपसे ही आता है ।

(१०३) जलमें नौका रहै, परन्तु नौकामें जल नहीं रहना चाहिये, ऐसे ही मुमुक्षु जगत्‌में रहै परंतु मुमुक्षुके मनमें जगत् नहीं रहना चाहिये ।

(१०४) हरिका मीठा नाम तालियें बजाकर गाओगे तो मन स्थिर होगा, वृक्षके नीचे बैठकर तालियें बजाओगे तो उसकी डालियोंपर बैठेहुए पक्षी चारों ओरको उड़जायँगे, ऐसे ही तालियें बजाकर श्रीहरिका नामकीर्त्तन करोगे तो तुम्हारे

हृदयमेंसे सब दुष्ट विचार उड़जायँगे ।

(१०५) अत्यन्त ज्वर और तृषासे व्याकुल हुआ रोगी, ऐसा विचार करता है, कि-मैं सारे समुद्र को पीसकूँगा, परंतु जब ज्वरका वेग उतरजाता है और फिर अपनी स्वाभाविक स्थिति पाताहै, तो एक लोटा जल भी कठिन से पीसकता है और उसकी प्यास थोडे से ही जलसे शीघ्र शान्त होजाती है, तसे ही मनुष्य जब मायाके उग्र आवेशमें आकर अपने क्षुद्रपनेको भूल जाता है, तब यह ऐसा विचार करता है, कि-मैं संपूर्ण परमात्मस्वरूपको अपने हृदयमें उतारसकूँगा, परन्तु जब मायाका परदा दूर होताहै तब परमात्मा के प्रकाशकी एक ही दिव्य किरण इसको नित्य और दिव्य सुखसे भरदेनेको समर्थ होतीहै ।

(१०६) अत्यन्त ज्वर और तृषासे पीडित हुए मनुष्यके पास शीतल जलसे भरे घड़े और चटपटे पदार्थोंसे भरे खुले पात्र धरदो, तो यह तृषासे व्याकुल और ज्वरसे बेचैन रोगी, चाहे उसकी दशा

खराब ही होजाय तो भी उस पासमें धरे पानीको पियें बिना और चटपटे पदार्थोंको खायेबिना नहीं रहेगा। ऐसे ही मनुष्य रात दिन चंचल और भ्रममें डालनेवाली इन्द्रियोंके उन्मादक असरके तले रहता है, उसको एक ओर स्त्रीकी सुंदरता और दूसरी ओर धनका आकर्षण इनके बीचमें छोडदो तो वह उनसे लिपटे बिना कदापि नहीं रहेगा, तब इसका योग्य वर्त्तावमें रहना कठिन है और इसप्रकार सत्य-मार्गसे डिगजाना और अपने हितकी अधिक रेड मारलेना संभव है।

(१०७) एक आदमी कुआ खोदनेलगा, बीस हाथतक खोदलेने पर भी जो जलका स्रोत निकलना चाहिये था वह नहीं निकला, तब इस स्थानको छोड़कर और जगह खोदनेलगा, तहां इससे भी अधिक खोदा परन्तु जलका स्रोत नहीं निकला, तब उसको भी छोड़कर और जगह खोदनेलगा, तहां इससे भी अधिक खोदा, परंतु परिश्रम वृथा गया, तब तो इसने उकताकर कुआ खोदना ही बन्द कर-

दिया, इन तीनों कुओंको खोदनेमें जो हाथसे कुछ ही कम रहगया, यदि यह एक स्थानसे दूसरे स्थान पर न जाकर पहिले ही कुए पर उस सब परिश्रमसे आधा भी परिश्रम करने में धीरज रखता तो जल पानेमें अवश्य ही सफल मनोरथ होता, ऐसे ही जो मनुष्य सदा अपने विचारों को बदला करता है उसकी ऐसी ही दशा होती है, एक ही विचार पर श्रद्धा रखकर और यह श्रद्धा फलीभूत होगी या नहीं इस विषयकी शंका न करते हुए साधन करता रहै तो मनुष्य अवश्य विजय पावेगा।

(१०८) एक लकडहेरा समीपके जंगल में से लायाहुआ लकडियोंका बोझा सदा बेचकर जोकुछ थोडेसे पैसे मिलजाते उनसे बहुत ही गरीबीकी दशामें समयको बिताता था, एक समय एक संन्यासी जो जंगलमें को होकर जारहा था, उसने इस लकडहेरेको काम करता देखा और कहा, कि--तू जंगल के भीतरके एकान्तके हिस्सोंमें जायगा तो तुझे लाभ होगा, लकडहेरेने यह सलाह मानली और एक सूखा

वृक्ष आया तहांतक चलागया तहां प्रसन्न होकर उस सूखे वृक्षमें से जितनी लकड़ी चलसकी लेआया जिनको कि--बाजारमें बेचनेसे बहुत नफा मिला, तदनन्तर यह अपने मनमें विचारनेलगा, कि--संन्यासी बाबाने मुझसे सूखे वृक्षके विषयमें कुछ नहीं कहा- केवल जंगलके भीतरी भागमें ही जाने की सलाह क्यों दी? इसकारण दूसरे दिन उस सूखे वृक्ष से भी आगेको बढ़गया तब तो इसने एक तांबेकी खान देखी और तहांसे जितना लियाजासका उतना तांबा ले बाजारमें बेचा तो बहुतसे पैसे पाये, दूसरे दिन ताँबेकी खान पर भी न रुककर साधुके कथनानुसार और आगे को बढ़ा चलागया तो चांदी की खानपर जापहुँचा, तहाँसे जितनी चलसकी उतनी चाँदी ले बाज़ारमें बेचने पर बहुतसा धन मिला, अधिक क्या कहैं, इसी प्रकार आगेको बढ़ते २ तथा सोने हीरेतक की खानोंपर पहुँचकर अन्तको यह बड़ा धनी होगया। जिस मनुष्यको सत्यज्ञान की इच्छा है वह भी ऐसा ही है, यदि वह थोड़ीसी

अलौकिक दैवी शक्तियोंको पाकर उनहींमें अटका न पड़ारहैगा किंतु आगेको बढ़ता चला जायगा तो वह अन्तमें अवश्य ही परमात्मविषयक नित्य ज्ञानको पावेगा।

(१०९) जिसको तैरना सीखना हो उसको कुछ दिनोंतक तो तैरना सीखनेका यत्न करना चाहिये, एक दिनके यत्नसे कोई भी समुद्रमें तैरनेकी हिम्मत नहीं करसकता, ऐसेही यदि तुम ब्रह्मसागरमें तैरना चाहते हो तो उसमें ठीकर तैरने के लिये कुछ दिनों तक निष्काम कर्मरूप यत्न करो।

(११०) जब किसीके पैरके तलुएमें गहरा काँटा लगजाता है तब उसको निकालनेके लिये वह दूसरा काँटा लेताहै, तैसे ही सोपाधिक ज्ञान ही सोपाधिक अज्ञानको कि–जो भीतरी नेत्रको अंधा करडालता है, दूर करसकताहै, यदि वास्तवमें देखाजायतो यह ज्ञान और अज्ञान दोनो ही मायामें रहतेहैं,इसलिये जो निरुपाधिक ब्रह्मका परमज्ञान प्राप्त करताहै वह ऊपर कहे ज्ञान और अज्ञान दोनेके पार जाकर

क्लेशसे मुक्त होजाताहै।

(१११) यदि यह शरीर निकम्मा और क्षणभंगुर है तो साधु और भक्तजन इस की सम्हाल किसलिये करतेहैं? खाली पेटीकी तो कोई रक्षा नहीं करता, सब अमूल्यरत्न, सुवर्ण और बेशकीमती पदार्थोंसे भरी हुई पेटीकी ही सावधानी से रक्षा करतेहैं, साधुजन जिसमें दिव्य परमात्माका वास है ऐसे इस शरीरकी ध्यान देकर रक्षा करतेहैं, क्योंकि-हमारे सबोंके शरीर परमात्माके ही वासस्थल हैं।

(११२) कुतुबनुमाकी सुई सदा उत्तर दिशाकी ओरको रहतीहै, उसको लेकर सफर करनेवाली नौका अपने मार्गको नहीं भूलती, ऐसे ही जबतक मनुष्यका हृदय ईश्वरकी ओरको रहता है तबतक वह संसारसागरमें डूब नहीं सकता।

(११३) जैसे भारतवर्ष में ग्रामोंकी स्त्रियें, एक के ऊपर एक इसप्रकार चार २ पाँच २ जलके भरे घड़े, अपने सुखदुःखकी बातें करती हुई लेजाती हैं और घडोंमेंसे एक बूँद भी नहीं गिरने देती हैं, ऐसे ही

धार्मिक व्योहियोंको धर्ममार्गमें चलना, चाहिये चाहे जिस दशामें हों परन्तु उनको नित्य ध्यान रखना चाहिये, कि--उनका हृदय सत्यमार्गसे न डिगजाय ।

(११४) हमारे यहां नाटकों में जहां कृष्णका जीवन व चरित्र दिखायाजाताहै, तहां हे कृष्ण आइये, हे प्यारे! पधारो, ऐसा ऊँचे स्वरसे गान और बाजेके साथ खेलका आरंभ होता है, परन्तु जो मनुष्य कृष्ण का रूप धरता है वह इस कोलाहल और घबराहट पर कुछ भी ध्यान नहीं देता और रंगभूमिके पीछे वेष धरनेके कमरेमें आनंदसे बातें करता रहताहै, परंतु जब कोलाहल बंद होता है और नारदमुनि मधुर तथा कोमल गाना गाते२ रंगभूमिमें आते हैं, और उछलते हुए प्रेमभरे हृदय-से कृष्णसे बाहर पधारनेकी प्रार्थना करते हैं, उस समय तुरंत ही कृष्णको मालूम होताहै, कि-अब ध्यान दिये बिना काम नहीं चलेगा, इस कारण स्वयं ही शीघ्रता से रणभूमिमें आजाते हैं। ऐसे ही जबतक भक्तजन पधारिये प्रभो! पधारिये! इस

प्रकार केवल मुखसे ही प्रार्थना करताहै कबतक वास्तवमें प्रभु कदापि नहीं आवेंगे, प्रभुतब पधारेंगे, जब भक्तका हृदय दिव्य प्रेमसे पिघलजायगा और इसके सकल ऊँचे स्वरोंका उद्गार सदाके लिये बंद होजायगा। जब मनुष्य गहरे प्रेम और भक्तिसे उबलतीहुई हृदयगुहामेंसे ईश्वरके लिये प्रार्थना करता है उस समय प्रभुके पधारने में विलम्ब हो ही नहीं सकता।

(११५) आत्माको पहिचान, तब अनात्मा और (सबके प्रभु) परमात्मा दोनोंको तू पहिचान सकेगा, जिसको हम 'मैं' कहतेहैं वह क्याहै? यह तो हमारे हाथ, पैर, मांस, रुधिर वा रगैं ही तो हैं? गहरा विचार करकै देखोगे तो मालूम होगा, कि-'मै' कोई पदार्थ ही नहीं है, केलेके पत्तोंकी तयकी समान मैं की तै खोलते चलेजाओ, सबको अलग करते २ मालूम होगा, कि-अन्तमें केवल परमात्मा ही शेष रहताहै, तब अहम्भाव जाता रहता है और परमात्माका प्रत्यक्ष होजाताहै।

(११६) जीवनकी आसक्तिको हम किसप्रकार त्यागसकते हैं? मनुष्यका शरीर नाशवान् पदार्थों का बनाहुआ है, मांस, रक्त और हड्डियोंका बना है। मांस, रुधिर, चर्बी तथा, आँतें इन सडनेवाले मलिन पदार्थोंका समूहरूप है,इसप्रकार शरीरमें की अहंता ममताको त्यागनेसे, उसके ऊपर की आसक्ति दूर होजाती है।

(११७) कच्ची पूरीको घीमें छोड़नेपर वह छुन छुन शब्द करती है परन्तु ज्यों ज्यों सिकतीजाती है त्यों त्यों शब्द कम होता चलाजाता है और जब ठीक २ सिकजाती है तब शब्द और उछलना बिलकुल बन्द होजाता है तैसेही जबतक मनुष्यका ज्ञान कच्चा रहता है तबतक ही वह वादविवाद और दूसरोंको उपदेश देनेके लिये अधिक बोला करता है परन्तु जब पूर्णज्ञान प्राप्त होजाता है तब वह इन निरर्थक उद्योगोंको त्यागकर मौन हो बैठता है।

(११८) हमको नित्य ज्ञानानन्दस्वरूपमें गहरा गोता लगाना चाहिये समुद्र की गहराईमेंके लोभ

क्रोध रूप मगर मच्छोंसे न डरो अपने शरीर पर विवेक वैराग्यरूपी हल्दी लेपलो तब उसकी गंधसे वह मगर मच्छ तुम्हारे समीप न आसकेंगे।

(११८) जिस घरमें जहरी सांप रहते हों उस घरमें रहनेवाले मनुष्य जैसे सदा सावधान और सचेत रहते हैं तैसेही काम क्रोध आदि सर्पोंसे भरे संसारमें मनुष्योंको सदा सावधान होकर तृष्णाके लालचोंसे बचे रहना चाहिये।

(११९) जिस पानी के घड़े की तलीमें एक छोटासा छेद हो तो उसहीमें को सब जल निकलजाताहै तैसेही मुमुक्षुको संसारका थोड़ासाभी रंग लगजाय तो उसका सब साधन व्यर्थ होजाताहै।

(१२०) लोहा जबतक अग्निमें रहताहै तबतक ही लाल रहताहै अग्निसे अलग हुआ कि तुरत काला पड़जाताहै तैसेही मनुष्यको जबतक ईश्वर के विषयका श्रवण कीर्तन आदि योग रहताहै तबतक ही उसमें ब्रह्मभाव रहताहै।

इति रामकृष्णोपदेशमाला समाप्त.